ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 86-87**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- I, Issues-39, YEAR- Jan.-March 2026

अश्वघोष की रचनाओं में धर्म एंव समाज

डॉ0 त्रिभुवन

असि0 प्रो0– संस्कृत विभाग, विन्दा पाल उग्रसेन पाल महाविद्यालय, सिक्टहाँ, सन्त कबीर नगर (उ0प्र0), भारत

Received-28.01.2026, Revised-06.02.2026, Accepted-12.02.2026 **E-mail:tribhuwan.gkp007@gmail.com**

सारांशः धर्म और समाज एक दूसरे के पूरक है। धर्म समाज में नैतिकता मूल्यों और सामाजिक नियंत्रण स्थापित करके व्यवस्था बनाए रखता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। भारतीय बौद्ध साहित्य अनेक ग्रन्थ रत्नों का सागर है, जिसमें अश्वघोष बौद्ध साहित्य के सर्वश्रेष्ट कवि है।

अश्वघोष ने अपने महाकाव्य में समाज के समस्त समस्याओं एवं तत्त्वों को समायोजित किया है। उस समय धर्म आपस में संघर्षशील थे। उनके अनुसार धर्म को अलौकिक शक्तियों की अपेक्षा प्रत्यक्ष सामाजिक तत्त्वों के आधार मानना चाहिए। धर्म भी अन्य सामाजिक घटनाओं की भांति समाज का एक अंग है। धर्म भी उनके विचारों से कुछ सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। जीवन की कष्टदायक घटनाएं मनुष्यों का जिन पर नियंत्रण नहीं होती, ऐसी आकस्मिक विपत्तियाँ आती है। जब लोगों को यह सोचने पर बाध्य होना पड़ता है कि कोई अलौकिक शक्ति मानवीय जीवन को नियंत्रित करती हैं, उस शक्ति को वश में करने या उसे प्रसन्न करने के लिए सामाजिक प्रयत्न का परिणाम धर्म है।

कुंजीभूत शब्द– आधुनिकता–बोध, मानव, आधुनिक, मनुष्य की विकास यात्रा, मोडो, सामाजिक संरचना, मूल्य, नई सोच, अजनबीपन।

समाज ही ईश्वर है, जिसकी शक्ति से मनुष्य घबड़ाता है और जो मनुष्य की क्रियाओं पर नियंत्रण रखता है। सामाजिक जीवन में एकता और संगठन स्थापित करने तथा समूह के सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करने में धर्म महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। **शम प्रधाने च मोक्ष धर्मो** समाज में सामाजिक क्रियाओं को करते हुए स्वर्ग की प्राप्ति को जीवन और प्रवाहमान साहित्य में कलात्मक सौन्दर्य के साथ युग की छवि समाहित होती है। युगबोध साहित्यकार को समाज की छवि रचना में अभिव्यक्त करने के लिए प्रेरित करता है। जीवन की आकांक्षा को धर्म माना गया है। मानव धर्म के सभी कर्तव्यों का पालन बड़ी शालीनता के साथ ग्रहण करता है। क्योंकि धर्म में निहित समस्त क्रियाएं उसको परिपक्व कर समाज के दायित्वों का निर्वहन कराती हैं। एवं उसका चतुर्दिक सामाजिक विकास कराती हैं।

समाज में मनुष्य को अपनी जाति एवं धर्म के अनुसार ही लोग आदर करते थे। उस काल में समाज का पर्याप्त नैतिक्त अधःपतन हो चुका था। वैदिक काल में समाज अत्यन्त संगठित था जिसमें एक वर्ग केवल इसीलिये पृथक् बना दिया गया था कि वह समाज को नैतिकता और सदाचार के नियमों पर दृढ़तापूर्वक अग्रसर करता रहे। यह वर्ग था ब्राह्मण। इस धार्मिक चेतना के कारण ही उसे अग्रजन्मा और श्रेष्ठ माना गया था, किन्तु यही वर्ग कालान्तर में सामान्य धर्म का त्याग कर उत्तरोत्तर अभिमानी, स्वार्थी, लोभी, इन्द्रियपरायण और हिंसक बन गया। ब्राह्मण समाज के अतिचार और निरंकुशता के कारण उत्तर वैदिक कालीन समाज में ब्राह्मणेत्तर वर्गों, विशेषतः क्षत्रियों में, विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई जिसके परिणामस्वरूप श्याज्ञिक निकालूंगा, द्वेषरहित होकर मैत्री भाव से हित और अनुकम्पक हो विहरूंगाश। वास्तव में तत्कालीन समग्र भारत इस प्रकार की सद्भाव–सरिता में अवगाहन कर रहा था। प्रायः इन्हीं शब्दों में इन विचारों को महाभारत में भी देखा जा सकता है।

व्यक्तित्व के विकास के लिये ज्ञान और आचार दोनों को महत्वपूर्ण माना गया है। ज्ञान के द्वारा मानव यशस्वी होता है और सदाचार से शान्ति पाता है। जैसा कि जातक में कहा गया है कि श्वेद निष्फल नहीं होते, संयमरहित आचरण भी सत्य है। वेद पढ़ने से कीर्ति की प्राप्ति होती है। संयत आदमी आचरण से शक्ति पद को प्राप्त होता है। **तस्माद्धर्मं फलतीह धर्म** मनुष्य यदि आलसी और अनुद्यमी है तो उसका सौ साल के जीवन से अपेक्षाकृत दृढ़ उद्यमशील होकर एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है। उद्योगी गृहस्थ ही श्रेष्ठ है, गृहस्थ कामभोगी आलसी पुरुष अच्छा नहीं होता। इस प्रकार उद्योगी धर्म से धन खोजने वाला, अभिमान न करने वाला, स्थिर प्रेम वाला, अकेला भोजन न करने वाला, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सज्जन पुरुषों की हंसी न उड़ाने वाला एवं जैसा कहता है वैसा करने वाला अर्थात् कथनी और करनी में अन्तर न करने वाला व्यक्ति ही दुनिया के अलभ्य वस्तु को भी प्राप्त कर सकता है।

दान का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए भगवान् बुद्ध के सम्मुख साधुसुत्त में विभिन्न देवताओं ने विभिन्न उदानों में कहा कि दानकर्म बहुत उत्तम है उसमें श्रद्धा से दिया गया दान श्रेष्ठ है। मनुष्य को कृपण (कंजूस) नहीं बनना चाहिये। पाप के निवारण के लिये पुण्यकर्म में दान करे, क्योंकि परलोक में स्वकृत कर्म ही आधार होता है। दान के सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध कहते हैं कि अन्न देने वाला बल देता है। वस्तु देने वाला वर्ण देता है, वाहन देने वाला सुख देता है, इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य के लिये मार (काम) जितना कष्टप्रद है उससे कम तृष्णा नहीं। तृष्णा दुःख का मूल है।

अश्वघोष की रचनाओं में समाज में व्याप्त हिंसा को रोकने पर विशेष बल दिया गया है। साथ ही साथ सभी जीवों के प्रति प्रेमभाव रखने की बात कही गयी है। भगवान् बुद्ध भिक्षु से कहते हैं कि ''वही श्रेष्ठ है जो स्मृतिमान् है, वह वैर से सर्वथा छूट नहीं जाता। जिसका मन दिन–रात अहिंसा में लगा रहता है। सभी जीवों के प्रति जो सदा मैत्री भावना करता रहता है। उसका किसी के साथ बैर नहीं रह जाता।

अश्वघोष की रचनाओं में सद्भावनाओं का अत्यधिक प्रचार किया गया है। सभी सांसारिक भोग–विलासों से दूर रहने के लिये सामान्य रूप से कहा गया है। गौतम बुद्ध ने यह बताया कि इस संसार में बैर से बैर कभी शान्त नहीं होता, अवैर से ही बैर शान्त होता है। यही मानव धर्म है। यह वात वैदिक साहित्य में भी कही गयी है– ष्अक्रोध से क्रोध को जीतो, बुराई से भलाई को जीतो, दान से कृपणता को जीतो, सत्य से झूठ को जीतो। कठोर न बोलो, बदले में भी कठोर न बोलो, क्रोध–वचन दुःखदायी है तुम्हें प्रतिदण्ड मिलेगा। प्राणियों की हिंसा करने से कोई आर्य नहीं होता। आर्य तो प्राणिमात्र की अहिंसा से ही कहा जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि इनकी रचनाओं में सद्भावना को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। सौन्दरनन्द में भगवान् बुद्ध नन्द से कहते हैं कि हे नन्द! तुझे इस प्रकार सीखना चाहिये,मेरे चित्त में विकार नहीं आने पायेगा, अमृत देनेवाला तो वह होता है, जो एक बार भी धर्म का उपदेश दे दे।

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है। अश्वघोष की रचनाओं में सामान्य जन को सुखमय जीवन व्यतीत करने के जीवहिंसा, बन्धन, चोरी, असत्य, धोखेबाजी, ठगी, निरर्थक अध्ययन, कठोर बचन, चुगुलखोरी, द्रोह, निर्दयता, अतिमान, अदानशील, क्रोध

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- I, Issues-39, YEAR- Jan.-March 2026

मद ढिठाई विरोध, माया, ईर्ष्या, आत्मप्रशंसा, मानप्रतिमान, दुष्टों की संगति, ऋण करने वाला कपटी, ढोंगी आदि संज्ञाओं से वंचित रहने का उपदेश दिया अश्वघोष ने अपनी रचनाओं में वर्तमान समान एंव धर्म की परिकल्पना के साथ भविष्य में धर्म की समाज के साथ होने वाली परिवर्तनशील संवदेना को वर्णित करने का प्रयास किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित का इतिहास, बलदेव उपाध्याय।
2. बज्र सूची, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
3. बुद्ध चरितम्, अश्वघोष।
4. बुद्ध चरितम्, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
5. बुद्ध चरितम् हिन्दी रूपान्त्ररण, स्वामी द्वरिकादत्त शास्त्री।
6. वेद कालीन समाज, डॉ0 शिवदत्त रानी।
7. रामाणय कालीन समाज, डॉ0 शान्ति कुमार।
8. बुद्ध कालीन समाज एंव धर्म, डॉ0 मोहन सिंह।
9. बज्रसूची, मैक्सबेवर।
10. सौन्दरानन्दम, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
11. प्रचीन भारत का सामाजिक इतिहास, जयशंकर मिश्र।

*****